**International Journal of Advanced Research and Development**
**ISSN: 2455-4030**
**Impact Factor: RJIF 5.24**
**www.advancedjournal.com**
**Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 672-674**

# पश्चात्य दर्शन में सामान्य के अवधारणावादी सिद्धान्त का संक्षिप्त विश्लेषण

**Amit Kumar Singh**
Research Scholar, Department of Philosophy, University of Allahabad, Uttar Pradesh, India

**सरांश**
सामान्य का अवधारणावादी सिद्धान्त यह मानता है कि सामान्य मात्र नाम नहीं हैं उनका अस्तित्व अवधारणाओं के रूप में मन में है, मन से स्वतन्त्र और बाहर नहीं। ये अवधारणाएँ वस्तुओं से सम्बन्धित सामान्य प्रत्यय हैं और इन्हें ही हम सामान्य कहते हैं, जैसे– नीली वस्तुओं से सम्बन्धित 'नीलापन' का सामान्य हमारे मन में है जो सभी नीली वस्तुओं पर समान रूप से लागू होता है। इस मत का स्पष्ट उदाहरण प्राचीन ग्रीक विचारक सुकरात के दर्शन में मिलता है। आधुनिक दर्शन में अवधारणावाद का प्रमुख समर्थक जान लॉक है। लॉक के अनुसार अवधारणाएँ अमूर्त प्रत्यय हैं। लॉक ने सामान्य को मानसिक अवधारणा माना है, जिसको अमूर्तिकरण की क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है।

**मूल शब्द:** अवधारणावादी सिद्धान्त, मानसिक अवधारणा

## प्रस्तावना
अवधारणावाद एक दार्शनिक सिद्धान्त है जो विशेषों की सार्वभौमिकता को अवधारणात्मक ढ़ांचे के रूप में व्याख्या करता है और यह अवधारणा विचारशील मन में स्थित होती है। अवधारणावाद सामान्य का वह तत्वमीमांसीय सिद्धान्त है जो अपनी उपस्थिति को विशेषों के मानसिक अनुभूति से बाहर होने का खण्डन करता है। आधुनिक युग में अवधारणावाद का प्रमुख समर्थक जॉन लॉक है। यह सिद्धान्त नामवाद और वस्तुवाद दोनों से भिन्न है। यह सिद्धान्त नामवाद का खण्डन करता है इसके अनुसार सामान्यों को नाम नहीं कहा जा सकता। सामान्य का अस्तित्व एक अवधारणा के रूप में मन में रहता है, इस मत का मूल श्रोत हमें सुकरात के दर्शन में प्राप्त होता है। सुकरात ने ज्ञान को सम्प्रत्यात्मक माना था। ग्रीक विचारधारा में सोफिस्ट विचारकों में ज्ञान का आधार इन्द्रिय–प्रत्यक्ष को माना था जिसका परिणाम यह हुआ कि वस्तुनिष्ठ सत्य नष्ट हो गया[1] लेकिन महान ग्रीक दार्शनिक सुकरात ने सत्य की वस्तुनिष्ठता को स्थापित करने के लिए ज्ञान को बुद्धि पर आधारित किया और घोषित किया कि समस्त ज्ञान सम्प्रत्ययों से निर्मित है।[2] पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे इन्द्रिय–प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, उदाहरण के लिये हम कुर्सी, कमरा, तारे आदि वस्तुएँ देखते हैं, यह हमारा इन्द्रिय–प्रत्यक्ष ज्ञान है। यह सदैव विशेष वस्तुओं का होता है। प्रत्यक्ष–ज्ञान प्राप्त करने के बाद यदि हम अपनी आँखें मूंद कर देखें तो हमारे सामने उसका एक मानसिक चित्र खिंच जाता है। इसे प्रतिबिम्ब या आकार कहते हैं। प्रत्यक्ष की भांति प्रतिबिम्ब भी सदैव विशेष वस्तुओं का ही होता है, किन्तु विशेष वस्तुओं के प्रत्ययों के अतिरिक्त हमें सामान्य प्रत्ययों का भी बोध होता है जो विशेष वस्तुओं के विषय में नहीं बल्कि वस्तुओं के वर्ग के विषय में होते हैं, उदाहरण के लिए जब हम कहते हैं कि 'मोहन मरणशील है' तो यहाँ पर हम सिर्फ एक व्यक्ति विशेष के बारे में विचार कर रहे हैं, किन्तु जब हम यह कहते हैं कि 'मनुष्य मरणशील है' तो यहाँ पर हम किसी व्यक्ति विशेष के बारे में नहीं अपितु सामान्य मनुष्य के बारे में विचार कर रहे हैं। इस प्रकार के विचार को 'सामान्य प्रत्यय' या सम्प्रत्यय कहते हैं। मनुष्य, गाय, स्त्री, रंग, ठोस, द्रव, गैस आदि वर्ग द्योतक जितने भी नाम हैं वे सभी सम्प्रत्यय हैं। इस प्रकार हम सम्प्रत्ययों का निर्माण किसी वर्ग के सभी सदस्यों में पायी जाने वाली सामान्य विशेषताओं के संग्रह और उस वर्ग के सदस्यों में अलग–अलग पायी जाने वाली विशेषताओं का परित्याग करके करते हैं।[3] इस अर्थ में अवधारणाएँ (सम्प्रत्यय) प्रतिमाओं से भिन्न है। प्रतिमा किसी विशेष वस्तु से ही सम्बन्धित होती है। प्रतिमा को किसी वस्तु विशेष का संस्कार कहा जा सकता है। इसके विपरीत अवधारणा वर्ग सम्प्रत्यय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अवधारणावाद का मूल श्रोत हमें ग्रीक दार्शनिक सुकरात के दर्शन में दिखाई देता है।

इसी प्रकार मध्यकालीन दर्शन में भी अवधारणावाद का समर्थक पीटर एबेलार्ड के दर्शन में प्राप्त होता है। पीटर एबेलार्ड एक मध्यकालीन विचारक थे जिनके दार्शनिक कार्यों में हमें अवधारणावाद के जड़ दिखाई देते है। उनके अनुसार अवधारणाएँ एक मानसिक विचार मात्र है जो कि मन में रहता है। मन से बाहर उसका अस्तित्व नहीं है। सामान्य के अवधारणावादी सिद्धान्त का परिचय मध्यकालीन दार्शनिक विलियम ओकम के दर्शन में भी प्राप्त होता है। चूँकि विलियम ओकम एक नामवादी दार्शनिक है, वह नामवाद का कट्टर समर्थक है। उसका नाम उत्कृष्टता के साथ नामवाद के साथ जुड़ा है लेकिन नामवाद के भिन्न–भिन्न प्रकार है– पहले प्रकार का नामवाद जिसमें तत्वमीमांसीय सामान्यों का खण्डन किया गया है, इस सन्दर्भ में ओकम अवश्य ही एक नामवादी दार्शनिक था। दूसरे प्रकार का नामवाद वह है जिसके आधारभूत तत्वमीमांसीय कोटियों या पदों को कम से कम मात्र एक सत् था सामान्य सत्ता में बांधने के प्रयास का पुरजोर विरोध करता है इस सन्दर्भ में भी ओकम नामवादी थे लेकिन तीसरे प्रकार का नामवाद अमूर्त वस्तुओं का खण्डन करता है। ओकम इस सन्दर्भ में नामवादी नहीं थे। ओकम अमूर्तता या अमूर्त वस्तुओं में विश्वास रखते थे जैसे कि सफेदी, मानवता इत्यादि ओकम अमूर्त सम्प्रत्ययों को मानसिक विचारों से परे नहीं मानता। इस अर्थ में ओकम को अवधारणावादी माना जा सकता है। ओकम का अमूर्त सत्ता जैसे कि ईश्वर, देवदूत आदि में दृढ़ विश्वास था।

इसी प्रकार आधुनिक विचारकों जैसे कि रेने देकार्त, जॉन लॉक आदि ने सामान्य के अवधारणावाद का समर्थन किया है। सामान्य के सिद्धान्त पर देकार्त की व्याख्या बहुत ही संक्षिप्त और त्रुटिपूर्ण

ही प्राप्त है लेकिन इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि देकार्त का सिद्धान्त तुच्छ या गौण है। देकार्त का सिद्धान्त प्लेटो और अरस्तू के वस्तुवाद को बहुत ही उन्नत तरीके से विरोध करता है। सकारात्मक और विशेष रूप से यह अवधारणावाद की ही व्याख्या करता है। देकार्त निश्चित रूप से नामवादी नहीं था।[4] क्योंकि वह कल्पना और शुद्ध विचार के बीच स्पष्ट अन्तर करता है, जबकि यह तत्व नामवाद में दिखाई पड़ता है जहाँ कोई अन्तर नहीं है, उनके अनुसार विचार केवल कल्पना करने की एक साधारण सी प्रक्रिया है। जॉन लॉक यहाँ पर एक प्रश्न करते हैं कि ''एक शब्द सामान्य कैसे बनता है?'' नामवादी इस प्रश्न का उत्तर करते कि एक सामान्य शब्द की व्यापकता की व्याख्या बिना किसी सामान्य प्रत्यय कि कल्पना किये की जा सकती है।[5] हम अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं कि एक शब्द कैसे सामान्य शब्द बनता हैः अक्सर देखा गया है कि वाज की नोंक और चीज की किनारों में समानता पायी जाती है और जब भी इस आकार की वस्तुओं को देखा जाता है तो उसे त्रिकोण कहा जाएगा। नामवादियों के अनुसार एक शब्द विशेषों के वर्ग के प्रतीक के द्वारा सामान्य शब्द बनता है।

पाश्चात्य दर्शन में सामान्य के सम्बन्ध में वस्तुवाद, अवधारणावाद और नामवाद की अवधारणएँ मिलती हैं। वस्तुवाद के अनुसार 'सामान्य' केवल मानसिक प्रत्यय ही नहीं है वरन् उसकी बाह्य सत्ता भी होती है। प्लेटो इस अर्थ में वस्तुवादी थे। नामवाद के अनुसार 'सामान्य' न तो कोई बाह्य सत्ता है और न ही कोई मानसिक सत्ता वरन् वह नाममात्र ही है। इन दोनों मतों से भिन्न अवधारणावाद है जिसके अनुसार 'सामान्य' न कोई बाह्य सत्ता है और न केवल नाम है वरन् यह एक मानसिक प्रत्यय है जो विशिष्ट प्रत्ययों के सामान्य अंशों को संयोजित कर मन में निर्मित किया जाता है। इस अर्थ में लॉक का मत अवधारणावाद से मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'सामान्य' के सम्बन्ध में लॉक का मत अवधारणावाद है।

लॉक के दर्शन में द्रव्य और अमूर्त प्रत्यय की कल्पना के साथ धनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। लॉक ने सामान्य प्रत्ययों की दो प्रकार से व्याख्या की है–1 मनोवैज्ञानिक व्याख्या और 2 तार्किक व्याख्या। मनोवैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार, एक बालक अपने धर में माँ–बाप, भाई–बहन, चाचा–चाची इत्यादि कई प्रकार के व्यक्तियों को अपने आस–पास देखता है। यद्यपि इन व्यक्तियों में रूप, रंग, लम्बाई, चौड़ाई, इत्यादि कई बातों में असमानताएँ हैं, पर इन असमानताओं के होते हुए भी उन व्यक्तियों में कुछ सामान्य विशेषताएँ अवश्य पायी जाती है। इन्हीं सामान्य और सर्वगत विशेषताओं को लेकर बालक अपने मन में एक सामान्य मनुष्य के प्रत्यय का निर्माण करता है। इस प्रत्यय के निर्माण में बालक मनुष्यों की असामान्य विशेषताओं का निराकरण करता है तथा सामान्य विशेषताओं को ग्रहण कर सामान्य प्रत्यय का निर्माण करता है। तार्किक व्याख्या के अनुसार, विज्ञान और तर्कशास्त्र में हम वर्गीकरण करते हैं। वर्गीकरण तभी संभव है जब हमारे मन में वर्ग, जाति या सामान्य प्रत्ययों का अस्तित्व हो। सामान्य प्रत्ययों के निर्माण में दो प्रकार की मानसिक प्रक्रियाएँ शामिल होती हैंः पहला प्रत्याहार या निराकरण और दूसरा संयोजन। वस्तुओं की सामान्य विशेषताओं को प्रथक करना प्रत्याहार कहा जाता है। पुनः सामान्य विशेषताओं को उन सभी विशिष्ट प्रत्ययों जिनमें कि वे सत् होती हैं, संयुक्त करना संयोजन कहलाता है। मनुष्य के सामान्य प्रत्यय के निर्माण में हम विभन्न मनुष्यों के सामान्य लक्षणों को उनके विशिष्ट लक्षणों से पृथक कर पुनः हम सामान्य लक्षणों को उनके विशिष्ट लक्षणों के साथ संयुक्त कर देते हैं जिससे कि ये निर्जीव न रह जायें। यही सामान्य प्रत्ययों के निर्माण में प्रत्याहार व संयोजन की प्रक्रियाएँ हैं परन्तु सामान्य प्रत्ययों का निर्माण कोई आसान प्रक्रिया नहीं होती। इसमें हमें बहुत सी विरोधी बातों का एक साथ चयन या निराकरण करना पड़ता है।लॉक के शब्दों में–''उदाहरण के लिये त्रिभुज के सामान्य प्रत्यय के निर्माण में क्या कुछ कष्ट और कुशलता की अपेक्षा नहीं होती? कारण वह न तो तिरछा हो और न सीधा, न तो विषमबाहु हो, न समद्विबाहु और न समत्रिबाहु ही बल्कि वह एक साथ सभी और इनमें से कोई एक भी नहीं हो। परिणाम स्वरूप वह कोई अपूर्ण वस्तु है जो सत् कभी नहीं हो सकती। यह एक प्रत्यय है जिसमें अनेक विरोधी और असंगत प्रत्ययों के कुछ अंश एक साथ रखे जाते हैं।''

सामान्य के विषय में सम्प्रत्ययवाद की धारणा यह है कि ''सामान्य न एक नाममात्र है और न एक बिम्ब, बल्कि एक सम्प्रत्यय या संकल्पना है। वास्तविक जगत् में केवल विशेष रहते हैं, परन्तु हमारे मन में कुछ और चीजें होती हैं– बिम्ब नहीं, बल्कि सम्प्रत्यय।''[6] वस्तुतः व्यक्तिवाचक नामों के अतिरिक्त अन्य सामान्य शब्द सम्प्रत्ययों या अवधारणाओं के नाम है[7], लेकिन ये हमारे मन में रहते है, इनका अस्तित्व मन से बाहर प्रकृति में नहीं है। मन से बाहर प्रकृति में कोई भी सम्प्रत्यय नहीं प्राप्त होते बल्कि विशेष वस्तुएँ होती हैंः लॉक ने बर्कले की प्रतिमा और सम्प्रत्यय में भेद किया है। लॉक के अनुसार प्रतिमा मानसिक नहीं है, प्रतिमा सम्प्रत्यय से भिन्न होती है हमारे मन में सम्प्रत्यय या अवधारणा रहती है, न कि कोई प्रतिमा। लॉक के अनुसार सामान्य एक जाति तत्व है जो स्थिर और अपरिवर्तनशील होता है। इस विशेष अर्थ में सामान्य वस्तुनिष्ठ है, न कि काल्पनिक। किन्तु वह यर्थाथवादी सिद्धान्त के विपरीत सामानयों को किसी जगत् के अर्न्तगत् सत् नहीं मानता है। लॉक के सामान्य मानसिक अवधारणाएँ हैं, जिन्हें अमूर्तिकरण की प्रक्रिया से प्राप्त किया जाता है। वास्तव में सामान्य कभी 'मूर्त' नहीं हो सकता है। 'मूर्त' और 'सामान्य' परस्पर विरोधी अवधारणएँ हैं। जो भी मूर्त है वह विशेष होगा, जिसका अनुभव सम्भव होना चाहिए। अतः लॉक यह सिद्धान्त कि 'सामान्य' 'अमूर्त–प्रत्यय' है, तर्कसंगत है।

यहाँ पर लॉक की अवधारणावाद के समक्ष कई प्रश्न उपस्थित होते हैं, यदि सामान्य को एक मानसिक अवधारणा मानते हैं, तो प्रश्न उठता है कि जो अवधारणाएँ हमारे मन में हैं, वे अवधारणाएँ किसकी अवधारणाएँ हैं? और इसका स्पष्ट उत्तर है ''उनका उभयनिष्ठ गुण''। किसी वर्ग के अन्तर्गत समस्त वस्तुओं में विद्यमान गुणों अथवा धर्मों के अमूर्तिकरण से हम सम्प्रत्यय को प्राप्त करते हैं, अर्थात् सम्प्रत्ययों के आधार वे विशेष वस्तुएँ हैं, जिनके गुणों का अमूर्तिकरण करके हम इसे प्राप्त करते हैं। इस स्थल पर अवधारणावाद अपने शुद्ध रूप में सुरक्षित नहीं रह पाता है क्योंकि यहाँ पर उसे वस्तुवाद का सहारा लेना पड़ता है। हम गुणों की तरफ पुनः लौट आते हैं। हास्पर्स के शब्दों में यदि हमारे सामान्य प्रत्ययों के आश्रय बाह्य जगत् में स्थित सामान्य गुण न हों तो उनकी संरचना नहीं की जा सकती है, अर्थात् बाह्य जगत् की वस्तुओं में स्थित समान गुणों के अभाव में सम्प्रत्यय नहीं प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु इसे स्वीकार कर लेने पर हम अपने विवरण में सम्प्रत्यय से अधिक समाहित कर लेते हैं।[8]

## सन्दर्भ


1. Stace WT. A Critical History of Greek Philosophy, Macmillan and Co. Limited, London, 1920, 143.
2. All Knowledge is Knowledge Through Concepts. Ibid, p 144.
3. When, shutting our eyes, we frame a mental picture of such an object, such consciousness is called an image or representation. Such mental images are, like perceptions

always ideas of particular individual objects, whether through sense-perception or imagination, we have also general ideas, that is to say, not ideas of any particular thing , but ideas of whole classes of things. If I say Socrtes is mortal. I am thinking of the individual, Socrates. But if I say Man is mortal, I am thinking, not of any particular man, but of the class of men in general. Such an idea is called a general idea, or a concept ----------thus a concept is formed by bringing together the ideas in which all the members of a class of objects agree with one another, and neglecting the ideas in which they differ. Ibid, 143-144.

4. Miller JW. The Review of Metaphysics. 1950; 4(2):239.
5. Ibid, P.240.
6. According to conceptualism, a universal is not merely a name nor an image. but a concept, In reality there are only particulars, but in our minds there is something else-not image but concept. Hospers, John An Introduction to Philosophical Analysis, Routledge and Kegan Paul Ltd., London, 1967, 363.
7. Ibid, P.363.
8. Ibid, P.363.